मनु का राजदर्शन

1. राज्य

राज्य की उत्पत्ति का दैवी सिद्धान्त—मनुस्मृति के सातवें अध्याय में राज धर्म का प्रतिपादन करते हुए राज्य या राजा की उत्पत्ति के दैवीय सिद्धान्त का विवेचन किया गया है। इसके अनुसार सृष्टि की प्रारम्भिक अवस्था बड़ी भयंकर थी। उस समय न कोई राज्य था और न कोई राजा तथा इसके अभाव में दण्ड व्यवस्था का कोई प्रश्न ही नहीं था। राज्य और अर्थ-व्यवस्था के अभाव में मनुष्यों की आसुरी प्रवृत्तियों को खुलकर खेलने का अवसर मिलता है, जिनके परिणामस्वरूप चतुर्दिक अराजकता का अखण्ड साम्राज्य था, चारों ओर भय का वातावरण था और सभी लोग दुखी अवस्था में थे। कोई भी व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करने की स्थिति में नहीं था। ऐसी स्थिति में ईश्वर ने सृष्टि की रक्षा के लिए राज्यपति (राजा) की व्यवस्था की। कौटिल्य ने भी इसका प्रतिपादन किया है कि जनता ने जब देखा कि अराजकता की स्थिति में आर्थिक संघर्षों के फलस्वरूप ही लोग नष्ट हो जायेंगे, तब वैवस्वत मनु को अपना राजा बनाया और उन्हें अपने अन्न का छठा भाग, अपने व्यापार के लाभ का दसवां भाग देने का वादा किया।

मनु के अनुसार सूर्य, यम, कुबेर, इन्द्र, वरुण, पवन और अग्नि सृष्टि की इन आठ सर्वाधिक महत्वपूर्ण शक्तियों और तत्वों से समन्वित होता है। इन आठ श्रेष्ठ तत्वों से समन्वित होने के कारण राजा विश्व का रक्षक, पोषक एवं समृद्धिकारक होता है। जिस प्रकार ये विशिष्ट शक्तियां अपने गुण विशेषों से समस्त सृष्टि पर शासन करती हैं, उसी प्रकार राजा अपनी शक्ति से इस लोक पर शासन करता है। मनुस्मृति के अनुसार, "ऐसा राजा इन्द्र अथवा विद्युत् के समान ऐश्वर्यकर्ता, वन के समान सबसे प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जानने वाला, यम के समान पक्षपातरहित न्यायाधीश, सूर्य के समान न्याय, धर्म विद्या का प्रकाश, अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करने वाला, वरुण के समान दुष्टों को अनेक प्रकार से बांधने वाला, चन्द्र के समान श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्द देने वाला तथा कुबेर के समान कोषों को भरने वाला होता है।"

मनु का विचार है कि राजा की रचना इन आठ देवताओं के उत्कृष्ट अंशों को लेकर की गयी है। कारण राजा न केवल एक देवता वरन् इनमें से प्रत्येक देवता से महान् है। वह तो इन आठ प्रमुख देवताओं के तत्वों के धारण करने वाला एक विशिष्ट देवता है। अतः राजा पद परम पवित्र है। "ईश्वर द्वारा उत्पन्न ऐसा राजा भले ही बालक हो, लेकिन उसे मर्त्य प्राणी समझकर उसकी अवज्ञा या अपमान नहीं करना चाहिए। राजा अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिए विविध रूप धारण करता है, इसलिए भूल से भी राजा का विरोध नहीं किया जाना चाहिए। धर्म के अनुकूल राजा जो भी व्यवस्थाएं निश्चित करे, उनका कभी भी अतिक्रमण नहीं किया जाना चाहिए। प्रजा को अनिवार्य रूप से शासक की इच्छाओं का पालन करना चाहिए, क्योंकि उसकी

Scanned with CamSc

इच्छा ईश्वर की इच्छा से प्रेरित होती है।'' इस प्रकार राजा का शासन मानवीय समझौते पर आधारित न होकर ईश्वरीय इच्छा पर आधारित है और राजा अपने कार्यों के लिए ईश्वर के प्रति ही उत्तरदायी है, न कि राजा के प्रति।

क्या राजा निरंकुश है? मनु द्वारा प्रतिपादित राज्य की उत्पत्ति के दैवी सिद्धान्त की तुलना प्रायः पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित दैवी सिद्धान्तों से की जाती है किन्तु दोनों में बहुत अधिक अन्तर है। पाश्चात्य विद्वानों ने राज्य की उत्पत्ति के दैवी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए राजा को निरंकुश सत्ता प्रदान की है। उदाहरण के लिए, इस सिद्धान्त के आधार पर ही फ्रांस का राजा लुई चौदहवां कहा करता था कि ''मैं ही राज्य हूं, मेरी इच्छा ही कानून है। मैं इस धरती पर ईश्वर का प्रतिनिधि बनकर शासन करता हूं।''

किन्तु मनु ने राजा को ऐसी निरंकुश सत्ता प्रदान नहीं की है। मनु ने राजा को धर्म के अधीन रखा है और इस बात पर बल दिया है कि राजा सदा प्रजा का पालन तथा उसकी रक्षा करे। राजा को दैवी अंश या देवांश बताया गया है किन्तु बल उसके दैवत्व पर है न कि उसके अधिकार अथवा चाहे जिस प्रकार आचरण करने पर और दैवत्व पर बल देने का तात्पर्य यह है कि राजा के द्वारा दैवीय गुणों के आधार पर प्रजा का पालन किया जाना चाहिए। मोटवानी के शब्दों में, ''राजा को समझना चाहिए कि वह धर्म के नियमों के अधीन है। कोई भी राजा धर्म के विरुद्ध व्यवहार नहीं कर सकता, धर्म राजाओं और मनुष्यों पर एक समान ही शासन करता है। इसके अतिरिक्त राजा राजनीतिक प्रभु जनता के भी अधीन है। वह अपनी शक्तियों के प्रयोग में जनता की आज्ञा पालन की क्षमता से सीमित है।'' इसी प्रकार सालेटोर ने लिखा है कि ''मनु ने निःसन्देह यह कहा है कि जनता राजा को गद्दी से उतार सकती है और उसे मार भी सकती है, यदि वह अपनी मूर्खता से प्रजा को सताता है।'' मनु का राजा विशिष्ट दैव होकर भी साधारण प्राणियों की भांति दण्ड भोगता है। इतना ही नहीं, वरन् जिस अपराध में साधारण व्यक्तियों को केवल एक पण का दण्ड दिया जाता है उसी में राजा को अधिक ज्ञानी होने के कारण शस्र (एक सौ) पण दण्ड मिलता है। इसके अतिरिक्त राजा का प्रशिक्षण और उसकी दिनचर्या भी उसे स्वेच्छाचारिता या निरंकुशता की ओर नहीं जाने दे सकते। वास्तव में मनु ने राज्य की उत्पत्ति के दैवी सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के साथ-साथ कुछ स्थानों पर संविदा सिद्धान्त को भी अपनाया है। अतः यह कहा जा सकता है कि राज्य की उत्पत्ति के दैवी सिद्धान्त को अपनाने पर भी मनु ने राजा को वैसी निरंकुश सत्ता प्रदान नहीं की है जैसी इस सिद्धान्त के पाश्चात्य प्रतिपादकों द्वारा राजा को प्रदान की गयी है।[1]

सप्तांग राज्य

मनु ने राज्य को सप्तांग माना है अर्थात् राज्य सावयव है। मनुस्मृति के अध्याय 9 के श्लोक 294 में कहा गया है—स्वामी, मन्त्री, पुर, राष्ट्र, कोष, दण्ड और मित्र ये सात राज प्रकृतियां हैं, इनसे युक्त 'सप्तांग' राज्य कहलाता है। मनु शासन के एक ही रूप राजतन्त्र को स्वीकार करते हैं और राज्य की इन सात प्रवृत्तियों में राजा या स्वामी को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हैं।

राज्य के कार्य—मनु ने अपने विचार दर्शन के अन्तर्गत राज्य के समुचित कार्यक्षेत्र का भी वर्णन किया है। मनु के अनुसार आन्तरिक शान्ति स्थापित करना, बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा करना और नागरिकों के पारस्परिक विवादों का निर्णय करना राज्य के सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य हैं। उपर्युक्त के अतिरिक्त मूल्यों को नियन्त्रित करना, विभिन्न समुदायों के बीच होने वाले झगड़ों का निबटारा करना, वैश्यों तथा शूद्रों को अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए विवश करना भी राज्य के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आता है। राजा को शिक्षा की व्यवस्था भी करनी चाहिए और शिक्षकों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। उसे सन्तानविहीन स्त्रियों, विधवाओं तथा रोगग्रस्त स्त्रियों की देखभाल करनी चाहिए। इस प्रकार मनु के अनुसार राज्य का कार्यक्षेत्र बहुत अधिक व्यापक है। मोटवानी के अनुसार, ''मनु के निर्देशन में राज्य द्वारा बनाये जाने वाले अनेक कानून वर्तमानकालीन राजशास्त्र के विद्यार्थी को समाजवादी प्रतीत होंगे।'' वस्तुतः मनु द्वारा चित्रित राज्य एक कल्याणकारी राज्य है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर लेने का अवसर मिलता है।

1 "Manu Smriti propounds theory of

Scanned with CamScanner

2. राजा

मनु का राजा की दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त में विश्वास है। ईश्वर ने इन्द्र, वायु, सूर्य, आदि देवताओं का सारभूत अंश लेकर राजा की सृष्टि की। इसी कारण राजा अपने तेज से सब जीवों को नियन्त्रित करता है। दैवीय अंश होने के कारण बालक राजा का भी अपमान नहीं करना चाहिए। मनु ने राजा को देव बनाया जिससे घृणा करने वालों को निरंकुश शक्तियों से दण्डित किया जाता है। डॉ. जायसवाल का कथन है कि मनु की विचारधारा में विभिन्न देवता राजा के शरीर में आते हैं और वह स्वयं एक महान देव बन जाता है।

राजा के गुण—मनुस्मृति के अनुसार राजा का प्रमुख कार्य प्रजा की रक्षा तथा कल्याण है। अतः इन कार्यों के भलीभांति सम्पादन के लिए राजा में कुछ गुणों का होना आवश्यक है। राजा को प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर विद्वान ब्राह्मणों की सेवा करनी चाहिए। उसे विनम्र तथा सेवाभावी होना चाहिए क्योंकि विनययुक्त राजा कभी नष्ट नहीं होता। उसे तीनों वेदों के ज्ञाता विद्वानों से त्रयी विद्या, नित्य दण्ड नीति विद्या, आन्वीक्षिकी विद्या और लोक व्यवहार से वार्ता विद्या को सीखना चाहिए। राजा को सर्वदा इन्द्रियों को जीतने में प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि जितेन्द्रिय राजा प्रजा को वश में रखने में समर्थ होता है। जितेन्द्रिय होने के लिए राजा को योगाभ्यास करते रहना चाहिए और काम-वासना से उत्पन्न 10 तथा क्रोध से उत्पन्न 8 दुष्ट व्यसनों से बचना चाहिए। काम-वासना से उत्पन्न 10 व्यसन इस हैं—शिकार, जुआ, दिन में सोना, पराये की निन्दा, स्त्री में अत्यासक्ति, मद्यपान, नाच-गाने में आसक्ति और निष्प्रयोजन भ्रमण। क्रोध से उत्पन्न 8 प्रकार के व्यसन इस प्रकार हैं—चुगली करना, बलात्कार, द्रोह, ईर्ष्या, असहिष्णुता, बुरे कार्य में धन को खर्च करना, कठोर वचन बोलना और बिना अपराध के दण्ड देना।

जो राजा काम-वासना से उत्पन्न व्यसनों में फंस जाता है, वह धन-धान्य तथा धर्म से रहित हो जाता है और जो क्रोध से उत्पन्न बुरे व्यसनों में फंसता है वह प्रकृति के प्रकोप के कारण शरीर से भी वंचित हो जाता है। मनु इन व्यसनों से राजा को सचेत करते हुए लिखते हैं कि, "व्यसन तथा मृत्यु दोनों ही कष्टकारक हैं किन्तु मृत्यु की अपेक्षा व्यसन अधिक कष्टकारक हैं, क्योंकि मरा हुआ व्यसनी पुरुष नरक में जाता है और मरने पर व्यसनरहित पुरुष स्वर्ग में जाता है।"

राजा के कर्तव्य—मनुस्मृति के अनुसार राजा को अपनी सुरक्षा के लिए पहाड़ी दुर्ग में निवास करना चाहिए क्योंकि वह सब दुर्गों में श्रेष्ठ होता है। दुर्ग को शस्त्रों, धन-धान्य, वाहन, ब्राह्मणों, कारीगरों, यन्त्रों, चारा और जल से परिपूर्ण रखना चाहिए। उसे स्वजातीय, शुभ लक्षणों वाली, श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न, रूप एवं गुण से युक्त स्त्री से विवाह करना चाहिए। राजा को अश्वमेध, विश्वजीत, आदि यज्ञ करवाने चाहिए और ब्राह्मणों को दान में प्रचुर धन देना चाहिए। राजा को अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों से ही कर वसूल करवाने चाहिए और प्रजा से कर लेते समय पितातुल्य व्यवहार करना चाहिए।

राजा को विभिन्न कार्यों—सेना, कोष, संग्रह, दूत कार्य, आदि के लिए अनेक प्रकार के अध्यक्ष नियुक्त करने चाहिए और उन अध्यक्षों को सब कार्यों की देख-रेख करनी चाहिए। राजा को युद्ध से डरकर नहीं भागना चाहिए। राजा को चाहिए कि वह लोगों को दण्ड द्वारा वश में रखे। राजा अविश्वासी पर विश्वास न करे। विश्वासी पर अधिक विश्वास न करे, बगुले के समान अर्थ चिन्तन करे, सिंह के समान पराक्रम दिखाये, भेड़िये के समान शत्रु का नाश करे और खरगोश के समान शत्रु के घेरे से निकल जाये।

राजा का कर्तव्य है कि वह राज्य की रक्षा करता रहे। वह गांवों व नगरों की सुव्यवस्था के लिए अनेक अधिकारी नियुक्त करे, स्वयं उनके कार्यों का निरीक्षण करता रहे और गुप्तचरों के द्वारा उनके व्यवहार को मालूम करता रहे। प्रजा का पालन करना ही राजा का श्रेष्ठ धर्म है। राजा को कार्य के अनुसार कठोर या मृदु होना चाहिए क्योंकि ऐसा ही राजा सबका प्रिय होता है। संक्षेप में मनु के अनुसार राजा का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य दण्ड धारण कर प्रजा की रक्षा करना और दुष्टों को दण्ड देना है। मनु के अनुसार दण्ड ही धर्म और दण्ड ही राजा है। जब सब सोये रहते हैं, दण्ड ही जागता रहता है।

राजा की दिनचर्या—मनु ने राजा की दिनचर्या का वर्णन इस प्रकार किया है—**सबेरे**—(1) स्नान, ध्यान, अध्ययन और पूजा, (2) न्याय, जनता की शिकायतों पर निर्यय देना, (3) मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा, (4) राज्य के परराष्ट्र मामलों के विषय में राजदूतों तथा गुप्तचरों के साथ परामर्श, (5) सैनिक मामलों के विषय में सेनापति के साथ परमर्श। **मध्याह्न और रात्रि**—(1) व्यायाम, स्नान, आराम और रनिवास के मामले, (2) सेना और युद्ध सामग्री का निरीक्षण, (3) सायंकाल की प्रार्थना, (4) गुप्त परामर्श, (5) संगीत और सोना।

Scanned with CamSc

युद्ध में राजा के कर्तव्य और आपद्धर्म—मनु के अनुसार प्रजा का पालन करता हुआ राजा समान, अधिक या कम बल वाले शत्रुओं से युद्ध के लिए ललकारने पर क्षत्रिय धर्म को स्मरण करता हुआ युद्ध से विमुख न होवे। युद्ध से डरकर न भागना राजा के धर्म का महत्वपूर्ण अंग है; युद्ध में शत्रुओं को मारते हुए राजा अपने धर्म को न छोड़े।

मनुस्मृति में वर्णित राजा का आपद्धर्म इस प्रकार है—राजा को प्रजा के धान्य का छठा, आठवां और बारहवां भाग लेने का शास्त्रसम्मत विधान होने पर भी आपत्तिकाल में उतना कर लेने से राज्य कार्य चलना असम्भव होने पर प्रजा के धान्य का चौथा भाग लेता हुआ और यथाशक्ति प्रजा की रक्षा करता हुआ राजा अधिक कर लेने के पाप से छूट जाता है।

3. शासन

शासन के सिद्धान्त—मनु के अनुसार शासन का मुख्य ध्येय धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति में साधक होना है। अतः शासन के सर्वेसर्वा राजा को मन्त्रियों के परामर्श से इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सदैव प्रयत्न करना चाहिए। मनुस्मृति में कहा गया है कि राजा (शासन) को अप्राप्य को प्राप्त करना चाहिए जो कुछ प्राप्त हो गया है उसकी रक्षा करनी चाहिए जिसकी रक्षा की गयी है उसमें विभिन्न प्रकार से वृद्धि करनी चाहिए और जो कुछ वृद्धि हो उसे सुपात्रों को दान कर देना चाहिए। इस प्रकार मनु के अनुसार शासन की नीति चार-सूत्री हुई—शक्ति और वैध उपायों द्वारा अर्जित करना, रक्षण करना, वृद्धि करना और सुपात्रों को दान करना।

मनु के अनुसार राजा को पिता के तुल्य प्रजा का पालन करना चाहिए। राजा को आवश्यकतानुसार कठोर और मृदु होना चाहिए। राजा न्यायी हो, दुष्टों का दमन करे तथा उन्हें कठोर दण्ड दे। राजा को उचित कर ही वसूल करने चाहिए। राजा को भ्रष्ट अधिकारियों की सम्पत्ति जब्त करके उन्हें राज्य से निकाल देना चाहिए। जो अधिकारी अपने कर्तव्यों का ठीक से पालन न करें उन्हें जुर्माने का दण्ड देना चाहिए।

मन्त्रिपरिषद्—मनुस्मृति में मन्त्रिपरिषद् शब्द का उल्लेख नहीं किया गया है अपितु 'सचिवान्' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसे मन्त्रिपरिषद् के रूप में ही लिया जा सकता है। मन्त्रिपरिषद् की आवश्यकता बताते हुए मनु ने लिखा है कि, "किसी व्यक्ति के लिए सरल कार्य भी अकेले सम्पादित करना कठिन है, अतः महान् फल देने वाला राज्य-कार्य तो अकेले राजा के द्वारा चलाया ही नहीं जा सकता।" अतः राजा को शासन कार्यों के लिए मन्त्रियों को नियुक्त करना चाहिए। मनु के अनुसार, वंशक्रमागत, शास्त्र-ज्ञाता, शूरवीर, शस्त्र चलाने में निपुण और उत्तम वंश में उत्पन्न सात या आठ व्यक्तियों को राजा द्वारा मन्त्री के रूप में नियुक्त करना चाहिए।

मनु के अनुसार, योग्यता के अनुसार मन्त्रियों के विभागों का वितरण करना चाहिए। इस विषय में मनु लिखते हैं—"शूर, दक्ष और कुलीन सदस्यों को वित्त विभाग, शुचि आचरण की विशेषता से युक्त सदस्य को रत्न खानि विभाग, धैर्ययुक्त सदस्य को अन्तर्निवेश विभाग और सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता, मनोवैज्ञानिक, अन्तःकरण से शुद्ध तथा चतुर और कुलीन व्यक्ति को सन्धि विग्रह विभाग का अधिष्ठाता बनाया जाना चाहिए। मन्त्रिपरिषद् के आमात्य नाम के सदस्य को दण्ड विभाग (सेना विभाग) और राजा को राष्ट्र एवं कोष अपने अधीन रखना चाहिए।" इन मन्त्रियों में से एक विद्वान् तथा धर्मादियुक्त ब्राह्मण को मुख्य पद प्रदान किया जाना चाहिए, क्योंकि "इस पृथ्वी पर जो कुछ भी है वह ब्राह्मण ही है। ब्राह्मण ब्रह्मा का ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ पुत्र है।" राजा को चाहिए कि वह मन्त्रियों के अभिप्राय को एकान्त में अलग-अलग तथा सभी के अभिप्राय को संयुक्त रूप से जानकर अपना हितकारी कार्य करे। राजा द्वारा मन्त्रियों के साथ निष्कपट बर्ताव किया जाना चाहिए और उन्हें अपने विश्वास में रखना चाहिए।

मनु के अनुसार पहाड़ पर या एकान्त महल में या निर्जन वन में राजा को दूसरों से अज्ञात होते हुए मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करनी चाहिए। जिस राजा के मन्त्र को दूसरे व्यक्ति नहीं जान पाते, कोष से हीन होने पर भी ऐसा राजा सम्पूर्ण पृथ्वी का भोग करता है। मन्त्रणा के समय राजा को चाहिए कि जड़, मूक, बहरे, अत्यन्त वृद्ध, स्त्री, म्लेच्छ, रोगी, रंक को हटवा दे क्योंकि ये सभी मन्त्र का भेदन कर देते हैं।

मनु की मन्त्रियों सम्बन्धी व्यवस्था काफी विकसित प्रतीत होती है। उसने मन्त्रियों की आवश्यकता पर बल देते हुए मन्त्रणा के समय और स्थान को भी बताया है। साथ ही मन्त्रणा की प्रणाली और विभागीय प्रथा की ओर संकेत किया है। मन्त्रियों में एक मन्त्री प्रधानमन्त्री जैसा बताया गया है। मन्त्र को पूर्णतया गुप्त ही रखा जाये अर्थात् गोपनीयता के सिद्धान्त पर विशेष बल दिया गया है।

Scanned with CamSc

अन्य अधिकारी—मनु के अनुसार शासन की नीति को कार्यरूप देने तथा अनेक कार्यों को संचालित करने के लिए अधिकारियों की संख्या काफी बड़ी होनी चाहिए, जो राज्य की आवश्यकताओं के अनुसार निर्धारित होगी। अन्य अधिकारी भी ईमानदार, चरित्रवान, बुद्धिमान, अनुभवी और अनेक कार्यों में कुशल होने चाहिए। यह अति आवश्यक है कि वे और उनके अधीन कर्मचारी किसी भी रूप में भ्रष्ट न हों। भ्रष्ट अधिकारियों के प्रति राजा का व्यवहार अत्यन्त कठोर रहे। राजा उनके कार्यों का निरीक्षण करे तथा गुप्तचरों द्वारा पता लगाये। मन्त्रियों के साथ ही मनु ने दूत के विषय में बताया है। राजा दूत ऐसे व्यक्ति को बनाये जो बहुश्रुत, हृदय के भाव, आकार व चेष्टाओं को जानने वाला, अन्तःकरण का शुद्ध, चतुर, कुलीन, प्रीति वाला, देश, काल का जानने वाला, निडर और बोलने वाला हो।

प्रादेशिक प्रशासन—भूमिगत आधार पर मनु ने राज्य को दो भागों—पुर तथा राष्ट्र में विभाजित किया है। पुर अथवा दुर्ग से अभिप्राय राजधानी का है। राजधानी का नगर कहां बसाना चाहिए, इस विषय में मनु का मत इस प्रकार है—जिस भू-भाग में अनेक प्रकार के वृक्ष, घास, जल, धान्य, आदि की उपज की पूरी सुविधा हो, जहां आर्यजन वास करते हों, जो देखने में रमणीय, वीर पुरुषयुक्त, हर प्रकार से सम्पन्न और स्वावलम्बी हो।

राष्ट्र में शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए उसे छोटी और बड़ी बस्तियों तथा क्षेत्रों में विभाजित किया जाना चाहिए। मनुस्मृति में 1 ग्राम, 10 ग्राम और 1,000 ग्रामों के पृथक-पृथक् संगठनों की व्यवस्था की गयी है। शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम है, 10, 20, 100 और 1,000 ग्रामों के अलग-अलग अधिकारी नियुक्त किये जाने चाहिए। प्रत्येक ग्राम का अधिकारी ग्रामिक कहलाता था। ग्रामिक को ग्राम में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखनी चाहिए। 10 ग्रामों के संगठन के अधिकारी को दशग्रामपति नाम से सम्बोधित किया गया है। इसी प्रकार 20, 100 और 1,000 ग्रामों के अधिकारियों को क्रमशः विंशति, शताध्यक्ष, शस्त्रपति कहा गया है। राष्ट्र में ग्रामों के अतिरिक्त नगर भी होते थे, किन्तु उनकी संख्या कम होती थी। प्रत्येक नगर में स्वार्थचिन्तक नाम के अधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी थी।

परिषद् या विधायिका—कार्यपालिका के विभिन्न अंगों के साथ-साथ मनु ने विधायिका की भी व्यवस्था की है। मनुस्मृति में परिषद् शब्द प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ ऐसे विद्वान व्यक्तियों से है जो तीनों वेदों के ज्ञाता हों। मोटवानी के अनुसार, विधायिका ऐसे बुद्धिमान व्यक्तियों से मिलकर बननी चाहिए जिन्होंने वेदों और टीकाओं का अध्ययन किया हो और अपने तर्कों के समर्थन में बुद्धियुक्त प्रमाण देने की योग्यता रखते हों। मनु ने विधायिका की रचना का विस्तार से वर्णन किया है। उसके अनुसार सदस्यों की संख्या 10 होनी चाहिए किन्तु रचना का आधार बौद्धिक योग्यता रहे न कि संख्या। तीन व्यक्तियों में से प्रत्येक एक-एक वेद का ज्ञाता हो, एक निर्वक्ता, एक मीमांसा का, एक निरुक्त और एक धर्मशास्त्र का कहने वाला और तीन व्यक्ति मुख्य व्यवसायों के। परन्तु यदि ऐसे 10 व्यक्ति न मिलें तो तीन ही काफी हैं और यदि 3 भी इन शर्तों को पूरा करने वाले न मिलें तो एक ही काफी है, यदि वह वेदों का ज्ञाता हो और उनका निर्वचन कर सके। ऐसा एक ही व्यक्ति राष्ट्रीय नीतियां निर्धारित करने के योग्य है।

4. कानून और न्याय व्यवस्था

दण्ड व्यवस्था—मनु के अनुसार दण्ड ही राजा है क्योंकि दण्ड में ही राज्य करने की शक्ति है। विद्वान् लोग दण्ड को धर्म का हेतु समझते हैं। यदि राजा अपराधियों को दण्ड न दे तो बलवान लोग दुर्बलों को वैसे ही पकाने लगें जैसे मछलियों को लोहे की छड़ में छेदकर पकाते हैं। दण्ड का यथायोग्य प्रयोग करता हुआ राजा धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति की ओर उन्मुख होता है। राजा को चाहिए कि राज्य में न्यायोचित दण्ड की व्यवस्था करे। कुल, जाति, गण और जनपद में से जो भी अपने धर्म से विचलित हो राजा उन्हें यथोचित दण्ड देकर फिर से निज धर्म की स्थापना करे। दण्ड चार प्रकार के होते हैं—धिग्दण्ड, वाग्दण्ड, धनदण्ड और वधदण्ड।

कानून का स्रोत—मनु के अनुसार कानून का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत वेद है। अन्य स्रोतों में स्मृतियां, वेदों में सज्जनों का आचार और स्वसन्तोष आते हैं।

न्याय व्यवस्था—मनुस्मृति में न्याय व्यवस्था का भी वर्णन किया गया है। मनु के अनुसार दो प्रकार के विवाद होते हैं—हिंसा के कारण उत्पन्न विवाद और देने योग्य भूमि या धन न देने से उत्पन्न विवाद। मनुस्मृति में वर्णन है कि यदि राजा स्वयं विवादों का निर्णय न करे, तो उस कार्य को देखने के लिए किसी विद्वान्

Scanned with CamSc

ब्राह्मण को नियुक्त किया जाना चाहिए। राजा के द्वारा नियुक्त ब्राह्मण भी ऐसे तीन अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर न्यायालय में विवादों का निर्णय करे। न्यायाधीशों को सभी विवादों का निर्णय पूर्ण निष्पक्षता से करना चाहिए, क्योंकि जिस सभा (न्यायालय) में सत्य, असत्य से पीड़ित होता है उसके सदस्य ही नष्ट हो जाते हैं।

मनु के अनुसार न्यायाधीश ब्राह्मण ही होने चाहिए, किसी भी दशा में शूद्र नहीं होने चाहिए। न्यायाधीश ऐसे व्यक्ति हों, जो बाहरी चिह्नों—स्वर, वर्ण, संकेत और चेष्टाओं से मनुष्यों के आन्तरिक भावों को जान सकें।

मनुस्मृति में प्रमाणों को दो भागों में विभक्त किया गया है—मानुष प्रमाण और दिव्य प्रमाण। मानुष प्रमाण तीन प्रकार के होते हैं—लिखित, युक्ति और साक्षी। मनु के अनुसार न्यायाधीशों द्वारा लिखित प्रमाण को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए, किन्तु बलपूर्वक लिखाये गये लेखों को अमान्य कर देना चाहिए। साक्षी प्रमाण में आखों देखा हाल होने के कारण ये भी विश्वसनीय होते हैं किन्तु मनु के अनुसार अन्न खाने वाले, सेवक, शत्रु, संन्यासी और कोढ़ी के कथनों पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए। साक्ष्य के पूर्व शपथ का विधान रखा जाना चाहिए और मिथ्या साक्षी देने वालों को कड़ा दण्ड दिया जाना चाहिए। स्त्रियों के लिए स्त्रियों का साक्ष्य लेना चाहिए। ब्राह्मण की साक्षी एक विशेषज्ञ के रूप में लेकर उसको सर्वोच्च महत्व दिया जाना चाहिए।

5. राजकोष तथा अर्थव्यवस्था

भारतीय चिन्तन में जीवन के जो 4 पुरुषार्थ या उद्देश्य घोषित किये गये हैं उनमें अर्थ भी एक है। अर्थ अथवा कोष तो राज्य का प्राण ही है। मनु ने कोष को राज्य के 7 अंगों में से एक माना है। कोष संचय की पद्धति को बताते हुए मनु का कथन है कि राजा को शनैः- शनैः अल्प मात्रा में संचय करना चाहिए। किन्तु कर लेने अथवा कोष संचय का अधिकार राजा को तभी है जब वह सुचारु रूप से प्रजा के रक्षण तथा पालन के कार्य में तल्लीन हो। प्रजा का रक्षण न करते हुए यदि राजा कोष संग्रह करता है तो इस लोक में प्रजा उसके विरुद्ध विद्रोह करती है और मरणोपरान्त वह नरक पाता है।

मनुस्मृति में प्रजा शोषण की नीति का घोर विरोध किया गया है। राजा को यह अधिकार नहीं कि किसी निर्धारित मात्रा से अधिक कर लगा सके।

मनु ने करों के प्रकार का भी वर्णन किया है। इन करों में बलि, शुल्क, दण्ड, भाग, आदि प्रमुख हैं। प्रजा द्वारा मास या वर्ष की अवधि में धन-धान्य या सामग्री के रूप में राजकोष के लिए जो कुछ भेजा जाता था उसे बलि कहते थे। विशेष रूप से यह कर ग्रामीण जनता पर लगता था। प्रजा की आय का षडांश मनु के अनुसार राजकोष का भाग माना जाता था। शुल्क बाजार या हाट में व्यापारियों द्वारा बिक्री के लिए लायी गयी वस्तुओं पर लगाया जाता था। इस विषय में मनुस्मृति में कहा गया है कि व्यापारियों को जो लाभ हो उसका 20वां भाग राजा को शुल्क के रूप में मिलना चाहिए। दण्ड-कर का अर्थ जुर्माने के दण्ड से है। राजा को चाहिए कि वह व्यक्ति के दोष और उसकी सामर्थ्य को देखकर अर्थ-दण्ड दे और इस प्रकार से प्राप्त होने वाले धन का राजकोष में संचय होना चाहिए। मनु का कथन है कि प्रजा के स्वर्ण के लाभ का 5वां भाग राजकोष के लिए कर रूप में लेना चाहिए।

Question

(1) मनुस्मृति किसकी रचना है?
(2) मनु राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में किस सिद्धान्त को मानते हैं?
(3) मण्डल सिद्धान्त और षाड्गुण्य नीति सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया है?
(4) मनु के अनुसार राजा को कर कैसे वसूल करना चाहिए?

---

(1) राजा के कर्तव्य के विषय में मनु के दृष्टिकोण की विवेचना कीजिए।
(2) राज्य के कार्यक्षेत्र के विषय में मनु के विचारों का परीक्षण कीजिए।
(3) राजा एवं उसके कर्तव्यों सम्बन्धी मनु के विचारों पर प्रकाश डालिए।

Scanned with CamSc